वेदों में यज्ञ उपासना

*मुरलीधर गुर्जर

सारांश

विश्व में भारतीय वैदिक साहित्य के इतिहास में वेदों का स्थान सर्वोपरी है। अपने प्रतिभा चक्षु के सहारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों की विशाल विमल शब्दराशि का ही नाम 'वेद है। सम्पूर्ण वैदिक संस्कृत में वेद वाङग्य सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है। वेद शब्द 'विद्' धातु 'घञ्' प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ ज्ञान अर्थात् ज्ञान राशि अथवा ज्ञान का भंडार होता है। वेद हैं – ऋक्, यजु, साम और अथर्व।

यज्ञः वैदिक धर्म की विशेषता यज्ञ है। ऋग्वेद – काल में यज्ञ, पूजन या उपासना के सामान्य अर्थ में भी गया है, किंतु बाद में अग्नि में आहुति देने के साथ अनेक प्रकार की क्रियाओं से युक्त अनुष्ठान को ही यज्ञ समझा जाता रहा है।

सवनः सवन का प्रारंभिक अर्थ था सोम को निचोड़ कर उसका रस निकालना। फिर यह सोम की आहुति के लिए आने लगा, जो दिन मे तीन बार दी जाती थी। प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन। बाद में यह यज्ञ या हविर्विशेष का वाचक बन गया।

- प्रातः सवन
- माध्यन्दिन सवन
- सायं सवन

सोमयागः सोमयाग का संक्षिप्त स्वरूप सोमयाग में सोमलता को कूट कर रस निकाल कर उस रस को ग्रहों से ग्रहण के लिए इन्द्रवायु मित्रावरूण आदि देवताओं को निर्देश किया जाता है – 'ऐन्द्र वायवं गृह्णाति' ' मैत्रावरूणं गह्णाति' आदि। तत्त देवता के लिए ग्रहों से सोमरस को ग्रहण कर होम किया जाता है। सोमरस ग्रहण के लिए जो देवता निर्दिष्ट हैं वे ही सोमयाग के देवता हैं।

तृतीय सवन में प्रयुक्त शुल्क यजुर्वेदीय के मंत्रः

कदाचन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी तुरीयादित्य सेवनं त इन्दियमातस्थाव्मृतं दिव्या दित्येभ्यस्त्वा।।

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेद सर्वन जुषाणाः। भरमाणा वहमाना हवीष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा।।

कूट शब्द – वैदिक साहित्य, यज्ञ, सवन, प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, सायं सवन, सोमयाग।

प्रास्तावना

भारतीय वैदिक साहित्य के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरव पूर्ण है। श्रुति की दृढ़ आधारशिला के

ऊपर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का भव्य विशाल प्रासाद प्रतिष्ठित है। हिंदुओं के आचार–विचार, रहन–सहन तथा धर्म–कर्म को भलीभांति समझने के लिए वेदों का ज्ञान विशेष आवश्यक है। अपने प्रतिभाचक्षु के सहारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों की विशाल विमल शब्दराशि का ही नाम 'वेद' है। सम्पूर्ण वैदिक संस्कृत में वेदवाङग्य सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है। वेद शब्द 'विद्' धातु 'घञ्' प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ ज्ञान अर्थात् ज्ञानराशि अथवा ज्ञान का भंडार होता है। वेद चार हैं – ऋक्, यजु, साम और अथर्व। इनके अंतर्गत मंत्रों का संग्रह किया गया है जिसे संहिता कहते हैं। वैयाकरण आचार्य पाणिनि ने वर्णों के परस्पर सान्निध्य को संहिता कहा है – परः सन्निकर्षः संहिता।[1] सायण ने तैत्तिरीय संहिता के भाष्य में वेद शब्द की कर्मकांड दृष्टि से परिभाषा इस प्रकार की है ''इष्ट्यप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रंथो वेदयति स वेदः '' तथा ऋग्वेद भाष्य भूमिका में स्वामी दयानंद ने वेद शब्द ''विन्दति, जानन्ति, विद्यते भवति, विदन्ते सर्वाः सत्यविद्या यैः यत्र स वेदः'' तथा मीमांसक वेदों की पूर्णता स्वीकार करते हुए कहते हैं। ''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।[2] अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान से जिस उपायों को प्राप्त नहीं कर सकते उस ज्ञान को वेद बता सकता है। मनुस्मृतिकार आचार्य मनु ने वेदों की परिभाषा इस प्रकार दी है ''वेदोऽखिलं धर्ममूलम्''।[3] इस प्रकार वेद मंत्रों का उच्चारण आज भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में किया जाता है।

- प्रथम संहिता ऋग्वेद है। 'ऋक्' शब्द की व्युत्पत्ति – 'ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्'। ऋग्वेद का विभाजन दो प्रकार का है – अष्टकक्रम और मण्डलकक्रम।
- द्वितीय संहिता, यजुर्वेद संहिता है। यजुः शब्द की व्युत्पत्ति 'अनियताक्षरावसानो यजुः'। महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि ने यजुर्वेद की 101 शाखाएँ मानी हैं, तद्यथा –'एकशतमध्वर्युशाखाः'। वर्तमान में यजुर्वेद की 6 शाखाएँ प्राप्त होती हैं। यजुर्वेद में कुल 40 अध्याय हैं।
- तीसरी संहिता, सामवेद संहिता है। साम शब्द की व्युत्पत्ति – सामानि यो वेति स वेदतत्वम्। महर्षि पतंजलि के अनुसार सामवेद की 1000 शाखाएँ हैं ''सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः' तथा वतर्मान में सामवेद की तीन शाखाएँ प्राप्त होती हैं
- चतुर्थ संहिता, अर्थवेद संहिता है। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार अथर्ववेद की 9 शाखाएँ हैं –नवधा अथर्वणो वेदः। वर्तमान में 2 शाखाएँ प्राप्त होती हैं।

वैदिक यज्ञ, याग एवं सवन

- **यज्ञ –** शब्द यज् धातु से नङ्. प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। यज्ञ शब्द वैयाकरणों और नैरूक्त आचार्यों के मतानुसार देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थ वाली 'यज्' धातु से निष्पन्न होता है।

यज्ञः यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्.। अष्टा 3/3/60

यज्ञः कस्मात् ? प्रख्यातं यजतिकर्मा। निरूक्त 3/20

तदनुसार जिस कर्म में देवों – अग्न्यादि प्राकृतिक तत्वों की पूजा – यथायोग्य गुणसंवर्धन, तथा प्रत्यक्ष देवों – विद्वानों की पूजा – सत्कार, जड़ हो या चेतन सभी से यथा योग्य व्यवहार करना देवपूजा कहलाती है।

पूजा का अर्थ है – सत्कार, यथायोग्य व्यवहार।

संगतिकरण – किन्हीं पदार्थों को यथोचित मात्रा में संयोग करना, जिससे प्राणियों का कल्याण एवं उत्कर्ष हो, श्रेष्ठ

धर्मात्मा, विद्वानों का सत्संग करना आदि। इस संगतिकरण के द्वारा शिल्पविज्ञान भी यज्ञ है।

दान– स्वयं उपार्जित धन–संपत्ति – विद्या आदि को प्राणिमात्र के कल्याण के लिए प्रयुक्त करना। इस प्रकार यज्ञ शब्द का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है।[4]

- **यज्ञः** वैदिक धर्म की विशेषता यज्ञ है। ऋग्वेद काल में –यज्ञ शब्द यजन, पूजन या उपासना के सामान्य अर्थ में भी गया है, किंतु बाद में अग्नि में आहुति देने के साथ अनेक प्रकार की क्रियाओं से युक्त अनुष्ठान को ही यज्ञ समझा जाता रहा है।[5]

- **यज्ञः** 'प्रख्यातं यजतिकर्मा इति नैरूक्ताः'

  यजन कर्म ही जो लोक में विख्यात है यज्ञ है।[6]

- **यागः** यज् धातु घञ् प्रत्यय घटित विधिविहित कर्म याग कहलाता है। तथा वषट्कारान्त मंत्र में अग्नि से आहुति को देना याग है। होम के कुक्षि में त्याग रूप याग है। यागों में प्रकृति विकृति भाव होते हैं। दशपूर्णमास कर्म को इष्टि भी कहते हैं और याग भी।[7]

- **यागः** शुक्लतीर्थी में भारद्वाज द्वारा विहित याग का वर्णन है उसमें याग का हविर्भाग राक्षस ने खा लिया था। भारद्वाज ने राक्षस पर कृपा करके जल सिंचित किया और इस प्रकार उस राक्षस की मुक्ति हुई।[8]

- **सवनः** सवन का प्रारंभिक अर्थ था सोम, सोम को निचोड़कर उसका रस निकालना फिर यह सोम की आहुति के लिए आने लगा, जो दिन में तीन बार दी जाती थी। प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, और सायं सवन। बाद में यह यज्ञ या हविर्विशेष का वाचक बन गया।[9]

- **सवन**

  1) यज्ञ

  2) राष्ट्र का स्थान

  'विश्रेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या ''(ऋ. 10.39.4)

  अर्थात हे अश्विवद्वय! तुम्हारे वे सभी कर्म (ता विश्रवेत्) यज्ञों में (सवनेषु) प्रवचनीय है (प्रवाच्या)

  ''स्थिराय वृष्णे : सवनाकृतेमा''

  3) सु+ल्युट् = सवन

  ''ये आजग्मु : सवनमिदं जुषाणाः''

  अर्थात् जो देवता इस यज्ञ में प्रेम के साथ आवें।[10]

  ऋग्वेद में प्रयुक्त सवन पद

- उप न : सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो

मदः ।। 1.004.02

हे सोमस्य का पान करने वाले इन्द्र! हमारे तीनों सवनों के समीप आइये, यहाँ आकर सोम का पान कीजिए। आप जैसे धनवान् का हर्ष गौओं को देने वाला होता है (यदि इन्द्र को सन्तुष्ट किया गया तो वह उपासक के पशु –धन की संवृद्धि करेगा। इस धारणा को व्यक्त किया गया है)। सवना– जिसमें सोम को निचोड़ा जाय, उसे सवन कहते हैं।

- मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्रवचर्षणे। सचैषु सपनेष्वा।। 1.009.03 हे शोभनहनु या शोभन नासिक वाले! सर्व यजमानों से पूज्य इन्द्र हर्षयुक्त इन स्तोत्रों से प्रसन्न हों तथा हे सर्वमनुष्य युक्त इन्द्रदेव! इन यागगत तीनों सवनों में अन्य देवों के साथ पधारें। विश्रवचर्षणे ' उपाधि का शाब्दिक अर्थ है – '' अरे! सभी मानव आपके हैं। ''सायण इसकी व्याख्या '' सभी मनुष्यों के साथ सम्पृक्त (सर्वमनुष्ययुक्त) '' करते हैं। वे इसकी पद व्याख्या – ''सर्वैर्यजमानैः पूज्य : ' '' अर्थात् यज्ञों के सभी आयोजकों के पूजनीय – करते हैं। मुख्य अर्थ आशय के अनुसार लेना चाहिए। सुशिप्र – सुशिप्र का अर्थ है – सुन्दर ठोड़ी वाला परन्तु शिप्रा का अर्थ है – निचला जबड़ा या नाक, अतः सुशिप्र का संयुक्त अर्थ '' सुन्दर नाक'' भी हो सकता है। सुन्दर हनु नासिका वाला : '' शिप्रे हनू नासिके वा '' (नि. 3.27) : विश्रवचर्षणे – सर्वद्रष्टाः सर्वमनुष्ययुक्त या सभी यजमानों से पूज्य।

- सेमं नः स्तोममा गापेदं सर्वनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब।। क्योंकि देवयजन के समीप अभिषुत सोम से युक्त, यह प्रातः कालीन सवनादिरूप कर्म है अतः गौरमृग के समान तृषित होकर इस सोमरस का पान कीजिए।

- उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सर्वनं सुतम्। इन्द्राग्नी एह गच्छताम्।। 1.021.04 अभिषव से युक्त, इस अनुष्ठीयमान प्रातः सवनादिरूप कर्म में सामीप्य से प्राप्त्यर्थ हम उग्र या वैरियों वध के क्रर इन्द्राग्नि देवों का आह्वान करते हैं। इन्द्र और अग्नि देव इस कर्म में आयें।

वैदिक याग एवं सवन

वैदिक धर्म की विशेषता यज्ञ हैं ऋग्वेद काल में यज्ञ शब्द यजन, पूजन या उपासना के सामान्य अर्थ में भी आया है किंतु बाद में अग्नि में आहुति देने के साथ अनेक प्रकार की क्रियाओं से युक्त अनुष्ठान को ही यज्ञ समझा जाता रहा है। अशेष ब्रह्माण ग्रंथ इन्हीं यज्ञप्रपंचों से भरे पड़े हैं। यज्ञ संस्था का इतना अधिक विस्तृत प्रचार अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। यज्ञों में प्रमुख हैः अश्रवमेध, राजसूय, पुरूषमेध, दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम आदि। यह यज्ञ तीन प्रकार के माने जाते हैं – हविर्याग, सोमयाग, पाकयज्ञ। अग्नि के तीन प्रमुख रूप माने गए हैं : गार्पत्य, आह्वनीय और दक्षिणाग्नि। शस्त्र, स्तोम, अनुवाक्या, अनुयाज्या प्रभुति अनेक परिभाषित शब्द यज्ञ से संबंधित हैं। यमस, द्रोण, उपयाम प्रभृत्ति अनेक यगिय पात्र होते हैं। वस्तुतः यज्ञ का विवरण संहिताओं से आरंभ होकर ब्राह्मणों एवं परवर्ति सूत्रों में इतना अधिक बढ़ गया है कि उसे अनंत कहा जा सकता है फिर भी यज्ञ के विषय में कुछ कह देना उचित प्रतीत होता है।[11]

श्रुति में वैदिक कर्मों को पांच भागों में बांटा गया है : ''स एश यज्ञ पञचविधोऽग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः ''[12] स्मृति में ऑपसनहोम , वैश्रवदेव, पार्वण, अष्टका, मासि श्राद्ध, श्रावण, शूलगव यह सात पाकयज्ञ – संस्थाएं हैं। अग्निहोत्र, दर्श और पूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ – पशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ आदि सात हविर्यज्ञ संस्थाएं हैंः अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरत्र, अतिरात्रि,

आप्तोर्यामा ये सात सोम संस्थाएं हैं[13]। इन श्रौत एवं स्मार्त संस्थाओं को मिलाकर इक्कीस बन जाते हैं : 'स एवं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतितख्यं यज्ञमपश्यत्.[14]।

सोमयाग एवं सवन का संबंध

सोमयाग

सोमयाग का संक्षिप्त स्वरूप सोमयाग में सोमलता को कूट कर रस निकाल कर उस रस को ग्रहों– वितस्ति परिमाण उलूखलाकार (ओखल के रूप वाले) काष्ठमय पात्रों के द्वारा ग्रहण कर होम किया जाता है। ग्रहों से ग्रहण के लिए इन्द्रवायु मित्रावरूण आदि देवताओं को निर्देश किया जाता है –' ऐन्द्र वायवं गृह्णाति ' ' मैत्रावरूणं गह्णाति 'आदि। तत्तदेवता के लिए ग्रहों से सोमरस को ग्रहण कर होम किया जाता है। सोमरस ग्रहण के लिए जो देवता निर्दिष्ट हैं वे ही सोमयाग के देवता हैं। ग्रहण के लिए जो देवता निदिष्ट हैं वे ही याग के भी उपकारक हो जाते हैं। सोमयाग के कई भेद हैं। उनमें एकाह '' अहीन '' साद्यस्क्र 'और' सत्र' इन संज्ञाओं से सोमयाग का व्यवहार होता है। सोमयागों के अड्.ग रूप में दीक्षा और उपसदइष्टियाँ विहित हैं। इन सब यागों का प्रकृति याग' ज्योतिष्टोम' है। इसका स्वरूप जान लेने से विकृति सोमयागों का स्वरूप अवगत हो जाता है। ज्योतिष्टोम संज्ञा एक होते हुये भी संस्था '– स्तोत्र का समाप्ति के भेद से भिन्न हो जाता है। जैसे अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र ये स्तोत्रों के नाम हैं।[15]

अग्निष्टोम संस्थाक्, ज्योतिष्टोम के अनुष्ठान के लिए पाँच दिन लगते हैं। अर्थात पांच दिनों मे यह संपन्न होता है। उनमें प्रथम दिन दीक्षा है। दीक्षा के लिए एक, तीन, छः, बारह आदि अनेक पक्ष है। दूसरे दिन का कर्तव्य – दूसरे दिन का प्रातः आवश्यक कर्मों को समाप्त कर प्रायणीयेष्टि का अनुष्ठान होगा। तीसरे दिन के कार्य – दूसरे दिन के अनुसार प्रातः प्रवग्ग्रज्ञ उपसद् का अनुष्ठान कर प्राग्वंश के पूरूस्ताद् भाग में महावेदी (उत्तरवेदी) का निर्माण यजमान को व्रतग्रहण, अपराह्न के अनंतर सांय प्रवग्ग्र उपसदनुष्ठान तथा व्रत ग्रहण किए जाते हैं। यह तीसरे दिन के कर्तव्य हैं। चौथा दिन – दीक्षा के चौथे दिन प्रातः पूर्ववत् प्रवग्ग्र और उपसत् का अनुष्ठान, प्रवग्ग्र का उद्वासन पात्रों को उत्तर वेदी में प्रक्षेप कर अग्निषोमीय पशुयाग का आरंभ होगा। पांचवा दिन का कर्तव्य – चार दिन तक अनुष्ठित सभी क्रियाकलाप प्रधान सोमयाग के अंग है प्रधान सोमयाग पंचम दिन में होगा। पांचवे दिन का कार्यकलाप तीन चरणों में संपन्न होगा प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन।[16]

प्रातस्सवन

पंचम दिन के कार्य अग्निष्टोम याग का यही प्रधान दिन होता है। इस दिन सोमसवन होता है। अतः इसे सुत्यदिन अथवा सुत्याह भी कहते हैं। इस दिन रात्रि के तीसरे पहर में ऋत्विज लोग सोकर उठ जाते हैं। इस समय अध्वर्यु आग्नीध्र, हविर्धान, सुच, स्थाली तथा सद का मंत्र पूर्वक स्पर्श करता है। तत्पश्चात् प्रजापतिर्मनसो.'' आदि मंत्रों द्वारा आग्नीधीय अग्नि में वह 33 यज्ञतनु संज्ञक आहुतियाँ करता है। पहले मंत्र द्वारा आहुति देने के पश्चात् पहले वाले मंत्रों को पढ़ता हुआ बाद वाले दूसरे मंत्रों से आहुतियाँ देता है।

अब खर पर पात्रों को रखा जाता है। खर के दक्षिणी अंस पर उत्तर में अन्तर्याम तथा दक्षिण में उपांशुग्रह पात्र रखा जाता है। ध्यातव्य हैं कि इन दोनों के बीच में उपाशु नामक पत्थर पात्रों से सटा कर रखने का विधान है। पश्चिम में ऐन्द्रवायव, मैत्रावरूण तथा आश्विन नामक द्विदेवत्य ग्रहों को रखना चाहिए। ऐन्द्रवायव ग्रह के चारों ओर रशना तथा मैत्रावरूण ग्रह पर अज – स्तन का चिहन बना होता है तथा आश्विन देवता का पात्र दो कोणों वाला होता है। इन द्विदेवत्यग्रहों के पश्चिम में एक पंक्ति में बिल्व का बना शुक्रग्रह दक्षिण तथा गूलर का बना मन्थिग्रह उत्तर में रखना चाहिए। इनके पश्चिम में अश्वत्थ के बने दो ऋतु पात्र एक पंक्ति में रखे जाते हैं। ध्यातत्य है कि ये पात्र

दोंनों ओर मुख वाले तथा अश्व के शफ (खुर) के समान मूल वाले होते हैं। इन्हें क्रमशः अध्वर्यु दक्षिण में तथा प्रतिप्रस्थाता उत्तर में रखता है। खर की दक्षिणी– श्रोणी पर आग्रयणस्थाली तथा उत्तर पर उक्थ्यस्थाली एवं उसके में उक्थ्य पात्र रखने का विधान है। इन स्थालियों के बीच में अग्नि, इन्द्र तथा सूर्य देवताओं के लिए 3 अतिग्राह्म पात्र रखे जाते हैं। खर के उत्तरी अंस पर गूलर का बना चौ को र दधिग्रह पात्र तथा दो अंशु अदाभ्य (जल वाले) पात्र रखने का विधान है। दधिग्रह के स्थान पर सोमग्रह का प्रयोग होने पर ऐसे ही सोमग्रह पात्र स्थापित किये जाते है। अध्वयं प्रातरनुवादक पाठ के लिए होता को प्रैष देकर प्रतिप्रस्थाता को प्रेष देगा–'

देवताओं के लिए सातों (गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, बृहती, उष्णिक् जगती तथा पंक्ति) छन्द में ऋचा का पाठ किया जाता है। इस अवसर पर ऐब्रा. (2.2.17) का कहना है कि जो इस प्रकार जनता है उसे सभी देवलोकों में समृद्धि, ग्राम्य पशुओं की प्राप्ति होती है।

पुरोडाश – आग्नीध्र द्वारा सवनीयनिर्वाप पुरोडाश। होता द्वारा प्रातरनुवाक का पाठ किए जाते समय आग्नीध्र इन्द्र के लिए ग्यारह कपालों पर पुरोडाश पकाता है, सवनीय हवियों में यह हवि प्रथम होती है, इसके अतिरिक्त हरियों के लिए धान, पूषा के लिए करम्भ, सरस्वती के लिए दधि, मित्रा वरुणों के लिए पयस्य (दूधकी बनी हुई खीर) की हवि बनाकर रखा है। विकल्प के रूप में यह भी विधान किया है कि 'सर्वं ऐन्द्रा भवन्ति' इस श्रुति के अनुसार इन्द्र–हरि के लिए धान, इन्द्रपूषा के लिए करम्भ, इन्द्र–सरस्वती के लिए दधि, इन्द्रमैत्रावरुण के लिए पयस्या की हवि बनाई जानी चाहिए।

माध्यंदिन सवन –

इसके प्रारम्भ में लोकद्वारि साम का गान हो जाने पर यजमान–सहित ऋत्विज् प्रातः सवन के समान समर्पण करें। तब अध्वर्यु और यजमान के सभा का अभिमर्शन इत्यादि कर लेने पर माध्यंदिन सवन के लिये प्रातःसवन के समान ही सोम को पीसते हैं। सोम पिस जाने के बाद अध्वर्यु ग्रहों को लेवे। उसमें शुक्र, मन्य, आग्रयण, मरुत्वतीय और उक्थ्य इन पांच का पहले ग्रहण होता है। तब होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, प्रस्तोता और सुन्वन्त प्रातःसवन के समान ही सब कुछ करके, सबके सभा में बैठ जाने पर अध्ययु माध्यंदिन पवमान का उपक्रम करें। तदुपरान्त सभी हवियों का प्रातः सवन के ही होमान्त कर्म किया जाता है। तब इडा को लेकर, होता को शुक और मन्धि ग्रहों का होमादि शान्त कर्म नमस–सहित करना चाहिये। उसमें सब का पात सावन के समान ही होता है। शेष छोड़कर प्रण किये नमसों को प्रातः सवन के समान ही अपने अपने स्थान पर रखकर सवनीय हवियों का ऋत्विज भक्षण करें। तब ऋत्विज को देने के लिए विहित दक्षिणा का दान होता है। उसके विभाजन का प्रकार पहले बताया जा चुका है। उसके अतिरिक्त सूत्र में कहे गये वस्त्र आदि भी देने चाहिये। तब मरुत्वतीय यह को लेकर, कहे अनुसार हवन करके भक्षण किये बिना, प्रतिप्रस्थाता के हाथ में पात्र देकर, पुनः ऋतुपाष द्वारा महामरुत्वतीय ग्रह को लेकर, बैठकर, पहले हवन किये गये मरुत्वतीय का अध्वर्यु और होता भक्षण करें। तब होता द्वारा मरुत्वतीयशस्त्र का प्रारम्भ किये जाने पर, उसके सामने बैठा हुआ अध्वर्य प्रतिगत करे। शस्त्र के अन्त में प्रतिप्रस्थाता तीसरे कुण्ठमरुत्वतीय ग्रह को पता अध्वर्य के साथ होम के स्थान को जावे, और जब वह मरुत्वतीय होम को करता हो तब, उसके बाद, कुण्ठ–त्वतीय का हवन करे। तब सबका भक्षण होता है। कण्ठमरुत्वतीय में प्रतिप्रस्थाता का ही भक्षण होता है। तब नाराशंचमस का भक्षण होता है। फिर माहेन्द्र को लेकर, बैठकर, पृष्ठस्तोत्र का उपकरण होता है। जब पहले पीस कर निचोड़े गये सोम का सवन होता है। यह सोम के सूखा होने से, एवं निग्राम्या जल के उस पर न छिड़के जाने से शुष्काभिषव कहाता है। इस प्रकार अभिषवण करके उद्गाता आदि द्वारा पृष्ठ की स्तुति किये जाने के समय, आघवनीय कलश में अभिषुत शुष्क सोम को रख दे। तब तृतीय सवन की हवियों का अग्नीत् निर्वाप करता है। इसमें वरुण के लिए एक कपाल तथा सोम के लिए चरु ये दो अधिक होते हैं। अन्य सभी कुछ प्रातःसवन के समान होता

है। पृष्ठ और स्तोत्र के समाप्त हो जाने पर, होता के उसी शस्त्र के शंसन कर लेने पर, पहले प्राप्त किये गये माहेन्द्र ग्रह को लेकर, हवन करके, तब नाराशंस चमसों के साथ भक्षण होता है। ग्रह में अध्वर्यु का एक बार सशेष भक्षण होता है, होता का दो बार बिना शेष छोड़े भक्षण होता है। तब चमसियों का चमस–भक्षण होता है। भक्षण करके, ग्रहों एवं चमसों को धोकर रख देने पर, प्रातः सवन के समान ही उक्थ्य ग्रहों का प्रचार होता है। तब प्रशास्ता द्वारा प्रसूत सारे ऋत्विज सभा से बाहर निकल जाते हैं। यह प्रसतान्त माध्यंदिन सवन का कर्म है।

पुरोडाश – सवन में सवनीय पुरोडाश के लिए धान उडेला गया था उसी प्रकार उक्त क्रिया माध्यन्दिसवन में भी होती है। प्रतिप्रस्थाता अग्नि के निमित्त पुरोडाश के लिए धान उडेलता है। अन्तर इतना अवश्य है कि प्रातः सवन में अभिक्षा ही होती है, किन्तु अन्तिम दो (माध्यन्दिन और तृतीय) सवनों में आमिक्षा नहीं होती इसके पश्चात् अन्य (सवनीय पुरोडाश प्रस्तुत करने से, बर्हि बिछाने से, आहुति पूर्ण करने से, ग्रहावकाश मंत्रों द्वारा प्रार्थना करने से और रेंगर चलने से सम्बद्ध) सभी क्रियाएं प्रातः सवन के समान ही अनुष्ठित होती है।

आहुति – प्रतिप्रस्थाता अग्नि के लिए, इन्द्र वाले ग्रह को नेष्टा और सूर्य वाले ग्रह को उन्नेता लेता है। होता द्वारा वषट्कार किये जाने पर अध्वर्यु आहुति देता है। चमस हिलाये जाते हैं। मन्त्र के साथ अलग–अलग तीन अतिग्राह्यग्रहों की आहुति दी जाती है। फिर मंत्र के साथ सोमपान किया जाता है। समन्त्रकही अतिग्राह्यग्रहों का पान किया जाता है। नाराशंसचमस भी समन्त्रक ही पाये जाते हैं। इस अवसर पर चमस भरे नहीं जाते अपितु उनको मांज दिया जाता है।

तृतीय सवन

इसमें पहले आदित्यग्रह होता है। उसे लेकर, आदित्यस्थाली से उसे ढककर, होमस्थान पर जाकर, उस स्थाली को सशेष हवन करके, शेष प्रतिप्रस्थाता को दे देवे। तब यजमान को लेकद्वारि साम का गान करना चाहिये। इसमें सवनादिभूत सर्पण एवं सभा का अभिमर्शन पहले की तरह करना चाहिये। तब आग्रयण का एवं उक्थ्य का ग्रहण होता है। तब आर्भवपवमान के उपकरण के लिये सभा से निकल जाय। आर्भवपवमान कर लेने पर सवनीय हवियों एवं पशु के अङ्गों का प्रचार होता है। तब चमसों का उन्नयनादि भक्षणार्थ कम होता है। तब ऋत्विज् लोग पिण्डपितृयज्ञ की तरह यजमान के पितरों को पिण्ड देवें। तब सावित्र–ग्रह का ग्रहण होता है। बाद में अध्वर्यु सशेष एक बार, होता दो बार, और चमस वाले सर्व भक्षण करे। तब सौम्यचर का अनुष्ठान होता है। तब प्रति प्रस्थ्ज्ञाता पालीवत ग्रह का अनुष्ठान करता है। तब अग्निष्टोम नामक यज्ञायज्ञिय स्तोत्र का आरम्भ होता है। उसके बाद पत्नीसंयाजादि पाशुक कर्म होते हैं। तृतीय सवन इतना ही है।

पुरोडाश – पशुहवियाँग सर्वप्रथम जलती हुई शलाकाओं से धिण्याओं में अध्वर्यु अग्निस्थापन करता है। यह क्रिया ऐच्छिक भी हो सकती है। प्रातः सवन के समान अध्वर्युसवनीय पुरोडाश बनाने के लिए धान और जौं उडेलता है। इन्द्र के लिए 12 कपालों पर पुरोडाश तैयार करता है, 11 कपालों पर भी इन्द्र के लिए पुरोडाश तैयार किया जा सकता है। आग्नीध्र पृष्ठ् यापर बर्हि बिछाता है तथा सभी प्रकार की आहुतियों की सामग्री पूर्णतः तैयार करता है। ब्रह्मा–अध्वर्यु और यजमान सदस् में जाने वाले हों तो वे सोम से भरे हुए पात्रों को देखते हैं। सत्याषाढश्रीसू. (8.5) के अनुसार प्रतिप्रस्थाता भी सदस् में प्रवेश करता है।

आहुति – इसके पश्चात् पशु की आहुति दी जाती है। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि पशु के अंग तीनों सवनों में भी पकाये जा सकते हैं अथवा तृतीय सवन में भी पशु के अंगों को पकाया जा सकता है। श्रीतकोश (पृ.सं. 431) के अनुसार पशु की आहुति से सम्बद्ध पुरोनु वाक्यारे तथा याज्या का भी पाठ किया जाता है।

यास्क–तोऽनादिष्टदेवताः मन्त्रास्तेषु देवतोपरीक्षा। यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्.ग वा (यज्ञांगं वा प्रातःसवने यो विनियुज्यते स आग्नेयः। यो माध्यन्दिने स ऐन्द्रः, यस्तृतीय–सवने स आदित्यः), तद्देवता भवन्ति। अथान्यत्र यज्ञात् 'प्राजापत्याः' इति याज्ञिकाः, 'नाराशंसा' इति नैरुक्तः। अपि वा, सा कामदेवता स्यात्, प्रायोदेवता वा। अस्ति ह्याचारो बहुल लोके देवदेवत्यम्, अति थिदेवत्यम्, पितृदेवत्यम् याज्ञदैवतो मन्त्र इति।

जो अनिर्दिष्ट देवता वाले मंत्र है, उनमें देवता (को जानने) का तरीका (यह है) यज्ञ अथवा यज्ञ के अङ्गभूत कर्म का जो देवता है, वही देवता (उनमें प्रयुक्त मन्त्रों का भी) होता है। और यज्ञ के अतिरिक्त (प्रयुक्त होने वाले अनिर्दिष्ट देवता के मंत्र) प्रजापति देवता वाले होते हैं, ऐसा यज्ञिकों का कथन है, 'नराशंस देवता वाले हैं' ऐसा नैरुक्तों का विचार है, अथवा उनका देवता वैकल्पिक होता है, अथवा देवताओं का समूह (देवता होता है), क्योंकि लोक में अत्यन्त प्रचलित आचार है – (यह वस्तु) देवरूप देवता की है, अतिथिरूप देवता की है, पितृरूप देवता की है। यज्ञरूप देवता का है।'

उपसंहार –

भारतीय वैदिक काल के इतिहास में यज्ञों का स्थान नितांत गौरव पूर्ण है प्राचीनकाल में सवन का अर्थ यज्ञ भी कहा गया है अर्थात् यज्ञ में सोमरस की आहुति देना सवन कहलाता था तथा सवन का उपयोग मुख्यतः सोमयाग में किया जाता है सोमयाग के पांचवे दिन का पूर्ण कार्यकलाप 3 चरणों में सम्पन्न होता है। जिसमें तीन सवन भागों में विभक्त हो जाता है – प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन। प्रातः सवन सवन में सोम को पीसते हैं तथा प्रतिप्रस्थाता सवनीयहवियों का निर्वाप करता है। सवनीयहवियां पांच होती है धाना, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश, पयस्या अभिक्षा। तथा माध्यन्दिन सवन में लोकद्वारी साम का गान हो जाने पर यजमान सहित ऋत्विज प्रातः सवन के समान समर्पण करेगा। तब अध्वर्यु और यजमान के सभा का अभिमर्शन इत्यादि कर लेने पर माध्यन्दिन सवन के लिए प्रातः सवन के समान ही सोम को पीसते हैं। इसमें अधिकांश प्रातः सवन के समान ही कार्यकलाप होते हैं। तृतीय सवन में पहले आदित्यग्रह होता है उसे लेकर आदित्य स्थली से उसे ढक्कन होमस्थान पर जाकर, उस स्थाली को सशेष हवन करके शेष प्रतिप्रस्थाता को दे दिया जाता है फिर चमस का उन्नयन आदि भक्षणार्थ कर्म होता है तब सावित्र ग्रह का ग्रहण होता है बाद में अध्वर्यू का सशेष एक बार, होता का दो बार और यह चमस वाले सर्व भक्षण का करें। तब सोमयचरू का अनुष्ठान होता है इसमें तब अग्निष्टोम नामक यज्ञायज्ञिय स्रोत का आरम्भ होता है इसके पश्चात् पत्नीसंयाजादि पाशुक कर्म होते हैं इस प्रकार तृतीय सवन समाप्त हो जाता है।

***सहायक आचार्य संस्कृत**
बाबा नारायण दास राजकीय कला महाविद्यालय
चिमनपुरा, शाहपुरा (राज.)

संदर्भ –

1. द्विवेदी मनोहर लाल, कात्यायन यज्ञ पद्धति विमर्श, प्रथम संस्करण, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 1988
2. मालवीय सुधाकर, ऐतरेयब्राह्मण, प्रथम भाग, तारा बुक एजेंसी, वाराणसी, 1986
3. शास्त्री पं. पीएन पट्टाबीराम, यज्ञ तत्व प्रकाश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, बंगलुरू, मद्रास संस्करण, 1992

4. शुक्ल कपिल देव, आपस्तम्ब श्रोत सूत एक अध्ययन, प्रथम संस्करण, वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर, 1996
5. शर्मा नारायणदत्त, अग्निष्टोम यज्ञ पद्धति विमर्श, यजुर्वेद पर आधारित, प्रथमा संस्करण, अमर ग्रंथ पब्लिकेशन, 2002
6. विश्वबन्धु, ऋग्वेद–संहिता : (स्कन्दस्वामी, उद्रीथ, वेंकटमाधव एवं मुद्गल भाष्य संहिता), विश्वेरानन्द वैदिक रिसर्च, इन्स्टीट्यूट, होशियारपुरा, वि.सं. 2011
7. शास्त्री राम कृष्ण, शुक्ल यजुर्वेद संहिता, प्रथम संस्करण, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 2015
8. मालवीय सुधाकर, ऐतरेयब्राह्मण, द्वितीय भाग, तारा बुक एजेंसी, वाराणसी, 2015
9. झा लक्ष्मेश्वर, कात्यायनश्रौतसूत्र, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, चौखंबा पब्लिशर्स, वाराणसी, 2015
10. दैवकरिण विरजानन्द, निरुक्तम्, आर्ष साहित्य संस्थानम्, गौतम नगरम्, दिल्ली, वि.सं. 2057
11. शास्त्री रामकृष्ण, शुक्ल यजुर्वेद संहिता तत्वबोधिनी हिंदी व्याख्योपेता, चौखंबा विद्या भवन वाराणसी, संस्करण 2015